पाठ्य सामग्री

षष्ठ पत्र, स्नातक प्रतिज्ञा

भारतीय काव्यशास्त्र — अलंकार (दूसरा भाग)

— चन्द्रेश्वर प्रसाद सिंह
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
अल-हफ़ीज़ कॉलेज
आरा।

शेषांश —

(२) यमक —

भिन्नार्थक अथवा निरर्थक स्वर-व्यंजन समुदाय की आवृत्ति को यमक कहते हैं।

अनुप्रास की तरह यमक में भी आवृत्ति होती है, लेकिन सिर्फ व्यंजनों की नहीं, बल्कि इसमें स्वर भी शामिल रहते हैं। इसमें शब्द की आवृत्ति होती है लेकिन दोनों बार शब्द भिन्नार्थक होते हैं। शब्द दो से अधिक बार भी आ सकते हैं।

जैसे — "माला फेरत जुग गया, गया न मनका फेर।
करका मनका डारि के, मनका मनका फेर॥"

यहाँ 'मनका' शब्द की आवृत्ति है। एक जगह इसका अर्थ है — मन का अर्थात् जी का और दूसरी जगह इसका अर्थ है — माले में गूँथा हुआ दाना। अत: यहाँ यमक अलंकार है।

(२) "केकी रव की नूपुर-ध्वनि सुन
जगती जगती की मूक प्यास।"

यहाँ 'जगती' शब्द की आवृत्ति है। पहली जगती है जागने की क्रिया — जग गई। जबकि दूसरी 'जगती' का अर्थ पृथ्वी है। अत: भिन्नार्थक शब्दों की आवृत्ति के कारण यमक है।

(3) श्लेष —

श्लिष्ट शब्दों से अनेक अर्थों का कथन श्लेषालंकार है।

श्लिष्ट का तात्पर्य है — सटा हुआ या चिपका हुआ अर्थात् शब्द विशेष में अनेक अर्थ सटे हुए या चिपके हुए हों। श्लेष अलंकार के लिए अनेकार्थवाची शब्दों की आवश्यकता होती है।

जैसे — "रहिमन पानी राखिए, बिन पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरै, मोती मानुष चून॥"

उपर्युक्त उदाहरण में 'पानी' शब्द में चिपके हुए तीन अर्थ प्रकट होते हैं। ये तीन वस्तुओं के संदर्भ में हैं। मोती के लिए 'पानी' का अर्थ है चमक या कान्ति, मनुष्य के लिए प्रतिष्ठा और चूने के लिए जल। इस प्रकार, 'पानी' द्वारा अनेक अर्थों का कथन होने के कारण यहाँ श्लेषालंकार है। पानी एक अनेकार्थक शब्द है।

श्लेष के दो भेद हैं — अभंग श्लेष और सभंग श्लेष।

(क) अभंग श्लेष में शब्दों को खंडित किए बिना दो अर्थ निकल जाते हैं। उपर्युक्त उदाहरण में 'पानी' को खंडित किए बिना तीन अर्थ निकले थे — चमक, प्रतिष्ठा और जल। अतः यहाँ अभंग श्लेष था। निम्नलिखित दोहा भी अभंग श्लेष का सुंदर उदाहरण है —

"जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय।
बारे उजियारो करै, बढ़ै अंधेरो होय॥"

यहाँ 'बारे' का अर्थ है जलाना और बचपन तथा 'बढ़ै' का अर्थ है बढ़ना और बुझना। अतः यहाँ अभंग श्लेषालंकार है।

(ख) सभंग श्लेष में शब्दों को तोड़कर अर्थ निकाले जाते हैं। जैसे — 'पूतनामारण में अति चीर' यदि इस तरह टुकड़ा करके पढ़ें — 'पूतनामा रण में अति चीर' — तो इसका अर्थ होगा — पवित्र नाम वाले (अर्थात् राम) युद्ध में अत्यंत धैर्यवान या निपुण हैं। पुनः यदि 'पूतना मारण में अति चीर' पढ़ें तो अर्थ होगा — पूतना (एक राक्षसी) को मारने में अत्यंत निपुण थी। इसके अतिरिक्त 'पूतना-मारण' में अर्थात् पूतना को मारने में (अर्थात् कृष्ण) अत्यंत धैर्यवान थे — यह अर्थ भी लिया जा सकता है। अतः यहाँ सभंग श्लेष है। सभंग श्लेष का दूसरा उदाहरण निम्नलिखित है —

"बहुरि सक्र सम बिनवउँ तेही। संतत सुरानीक हित जेही॥"

यहाँ तुलसीदास जी ने खलों की वंदना के प्रसंग में 'सुरानीक' विशेषण का प्रयोग किया है। टुकड़े करने पर इसके दो अर्थ निकलते हैं। खलों के पक्ष में — सुरा + अनीक (अर्थात् अच्छी मदिरा) तथा इन्द्र के अर्थ में — सुर + अनीक (अर्थात् देवसेना)। इन दोनों अर्थों के कारण यहाँ सभंग श्लेषालंकार है।

कुछ प्राचीन आचार्यों ने श्लेष में अर्थ की प्रधानता को देखते हुए इसे शब्दालंकार की जगह अर्थालंकार में परिगणित किया है। किन्तु गहन विश्लेषण के बाद अब यह मान लिया गया है कि शब्द-परिवर्तन से श्लेष नहीं हो सकता अतः यह शब्दाश्रित है और शब्दालंकार में गणनीय है। हाँ, जहाँ शब्द-परिवर्तन के बावजूद अर्थ-परिवर्तन नहीं होता, वहाँ अर्थश्लेष माना जा सकता है। अर्थश्लेष का एक उदाहरण निम्नलिखित है —

"रंचहि सों ऊँचो चढ़ै, रंचहि सों घटि जाय।
तुला कोटि खल दुहुन की, एकै रीति लखाय॥"

इस दोहे में 'रंचहि' के बदले 'थोड़हि' कर देने पर भी अर्थ नहीं बदलता। इसलिए यहाँ श्लेष अर्थ पर आधारित है, शब्द पर नहीं। अर्थश्लेष होने के कारण यहाँ अर्थालंकार है।

(5) वक्रोक्ति

किसी अन्य अभिप्राय से किये गये कथन का जब श्रोता काकु अथवा श्लेष के द्वारा कोई अन्य अर्थ कल्पित कर ले तब वहाँ वक्रोक्ति अलंकार होता है। इस प्रकार, वक्रोक्ति के दो भेद हो जाते हैं। काकु वक्रोक्ति और श्लेष वक्रोक्ति।

(क) काकु वक्रोक्ति — कंठध्वनि की विशेषता से अन्य अर्थ कल्पित हो जाना ही काकु वक्रोक्ति है। इसमें शब्द के कारण नहीं, बल्कि कंठध्वनि के विकार से अर्थ-परिवर्तन होता है, अतः अनेक आचार्यों ने इसे अर्थालंकार माना है। किन्तु आचार्य मम्मट इसे कथन-शैली के कारण शब्दालंकार मानते हैं। जैसे —

"लिखन बैठि जाकी सबिहि, गहि-गहि गरब गरूर।
भए न केते जगत के, चतुर चितेरे कूर॥"

उपर्युक्त उदाहरण में उच्चारण के विशेष ढंग अथवा काकु के कारण 'भए न केते' (कितने न हो गए) का अर्थ 'सभी हो गए' हो जाता है। अतः यहाँ काकु वक्रोक्ति है।

(ख) श्लेष वक्रोक्ति — श्लेष के अनुसार इसके दो भेद हो जाते हैं। शब्दों को बिना खंडित किए अर्थ-परिवर्तन — अभंगश्लेषमूला वक्रोक्ति तथा शब्दों को खंडित करने पर अर्थ-परिवर्तन — सभंगश्लेषमूला वक्रोक्ति।

अभंगश्लेषमूला वक्रोक्ति —

"एक कबूतर देख हाथ में पूछा कहाँ अपर है?
उसने कहा 'अपर' कैसा? वह उड़ गया सपर है।"

यहाँ जहाँगीर द्वारा अपर (दूसरा) कबूतर के बारे में पूछने पर नूरजहाँ का जवाब मिला कि वह अपर (पंखहीन) नहीं था। वह सपर (पंखवाला) कबूतर था, इसलिए उड़ गया। अतः यहाँ अपर का अन्य अर्थ ग्रहण किए जाने के कारण अभंगश्लेषमूला वक्रोक्ति है।

सभंगश्लेषमूला वक्रोक्ति —

"मान तजो गहि सुमति बर, पुनि-पुनि होत न गेह।
मानत जोगी जोग को, मोहि न जोग सनेह॥"

उपर्युक्त उदाहरण में मान तजने अर्थात् रूठना छोड़ने के लिए कहा गया। सुनने वाले ने जवाब दिया कि योगी योग को मानता है, मुझे योग से लगाव नहीं है। इसमें 'मानतजोगहि' काव्यांश को खंडित करके दूसरा अर्थ निकाला गया है। अतः यहाँ सभंगश्लेषमूला वक्रोक्ति है।

(5) उपमा

भिन्न पदार्थों के सादृश्य-प्रतिपादन को उपमा कहते हैं।

उपमा अलंकारों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। अनेक अर्थालंकारों का आधार है, इसलिए इसे एक व्यापकत्व प्राप्त है। हम अपने दैनिक व्यवहारों में भी किसी के रूप-गुण-स्वभाव को अधिक स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त करने के लिए उसकी तुलना किसी अन्य वस्तु से करते हैं। उस वस्तु से समानता दिखाते हैं। इस तरह दो भिन्न वस्तुओं में किसी खास गुण को लेकर तुलना करना — उस तुलना के द्वारा उसकी प्रशंसा या निन्दा करना ही उपमा है। जैसे — 'इसका मुख चाँद के समान सुंदर है', वह हाथी-सा मोटा है' इत्यादि। यह भी उल्लेखनीय है कि दो वस्तुओं के किसी एक गुण या विशेषता को ही तुलना या उपमा का आधार बनाया जाता है, सारे गुणों या विशेषताओं का मिलना आवश्यक नहीं है।

उपमा अलंकार के चार अंग हैं। कभी-कभी इनमें से एक या दो लुप्त भी रहते हैं और कभी-कभी एक या दो अंगों की संख्या अधिक भी हो सकती है। सामान्यतः चारों अंग रहते हैं और इनको पारिभाषिक शब्दों की तरह इस्तेमाल किया जाता है।

1. उपमेय — जो उपमा देने के योग्य हो। जिसकी समानता किसी वस्तु से दिखायी जाय।
2. उपमान — जिसके समान बताया जाय, जिससे उपमा दी जाय।
3. साधारण धर्म — वह गुण या विशेषता जो समानता या तुलना का आधार होता है।
4. सादृश्यवाचक — समता बताने के लिए जिसका उपयोग किया जाता है।

उपर्युक्त चारों अंगों को निम्नलिखित उदाहरण से समझा जा सकता है।

'मुख चन्द्र-सा सुन्दर है।

मुख — उपमेय

चन्द्र — उपमान

सा — सादृश्यवाचक

सुन्दर — साधारण धर्म

उपर्युक्त चारों अंगों को इन नामों से भी पुकारा जाता है —

उपमेय — प्रस्तुत

उपमान — अप्रस्तुत

सादृश्यवाचक — वाचकपद

साधारण धर्म — समानधर्म या साधर्म्य

उपमा के भेद — उपमा के मुख्यतः दो भेद हैं और अनेक उपभेद भी हैं।

→

(क) पूर्णोपमा — उपमा के चारों अंगों का शब्द द्वारा कथन हो तो उसे पूर्णोपमा कहते हैं। जैसे —

"मोम-सा तन घुल चुका अब दीप-सा मन जल चुका है।"

इस उदाहरण में उपमा के चारों अंग मौजूद हैं। जैसे — तन (उपमेय) मोम (उपमान) सा (वाचक पद) घुल चुका (साधर्म्य)। मन — (उपमेय) दीप (उपमान) सा — वाचक पद जल चुका (साधर्म्य)। चारों अंगों के कथन के कारण यहाँ पूर्णोपमा अलंकार है।

पूर्णोपमा के दो उपभेद भी हैं। (क) श्रौती पूर्णोपमा — जहाँ सुनने मात्र से साक्षात सादृश्य - बोध होता है जैसा कि उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है। इसके सादृश्यवाचक हैं — यथा, इव, ना, सा, सी, से, सों, सौं, जिमि, जैसा इत्यादि। उपर्युक्त उदाहरण में 'सा'।

(ख) आर्थी पूर्णोपमा — जहाँ अर्थानुसंधान से ही सादृश्य-सम्बन्ध स्पष्ट होता है। कारण यह है कि इसके सादृश्यवाची शब्द कभी उपमेय, कभी उपमान और कभी-कभी दोनों से अन्वित रहते हैं। ये शब्द हैं — तुल्य, सम, समान, सदृश, सरिस आदि जैसे — "सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही। मधुकर सरिस संत गुनग्राही॥"

संत — उपमेय
मधुकर — उपमान
गुनग्राही — साधर्म्य
सरिस — वाचक पद

(ख) लुप्तोपमा — जब उपमेय, उपमान, साधर्म्य और वाचक पद में से किसी एक, दो, या तीन अंगों का लोप हो तो उसे लुप्तोपमा कहते हैं।

(क) उपमेय लुप्ता — "चंचल है ज्यों मीन, अरुनारे पंकज सरिस।
निरखि न होय अधीन, ऐसो नर-नागर कवन॥"

मीन, पंकज — उपमान
चंचल, अरुनारे — साधर्म्य
ज्यों, सरिस — वाचक पद

उपमेय 'नेत्रों' का कथन नहीं है। शेष अंग मौजूद हैं। अतः यहाँ उपमेय लुप्ता है।

(ख) उपमान लुप्ता — "तीन लोक झाँकी, ऐसी दूसरी न झाँकी, जैसी
झाँकी हम झाँकी बाँकी जुगलकिसोर की।"

जुगल किसोर की झाँकी — उपमेय
बाँकी — साधारण धर्म
ऐसी — वाचक पद
दूसरी न झाँकी — अर्थात् उपमान का लोप है। →

(ग) साधर्म्य लुप्ता — "कुन्द इन्दु सम देह, उमा रमन करुना अयन।
जाहि दीन पर नेह, करहु कृपा मर्दन मयन॥"

देह (शंकर की) — उपमेय
कुन्द और इन्दु — उपमान
सम — वाचकपद

यहाँ साधारण धर्म (गोरा रंग) का लोप होने के कारण साधर्म्य लुप्ता है।

(घ) वाचकलुप्ता — "नील सरोरुह स्याम, तरुन अरुन वारिज नयन।
करउ सो मम उर धाम, सदा छीरसागर सयन॥"

छीरसागर सयन = विष्णु — उपमेय
नील सरोरुह — उपमान
स्याम — साधारण धर्म

यहाँ वाचकपद लुप्त होने कारण वाचकलुप्ता है।

लुप्तोपमा के अन्य उपभेद निम्नलिखित हैं —

(ङ) धर्मवाचक लुप्ता — जहाँ उपमेय और उपमान हों किन्तु साधर्म्य और वाचकपद लुप्त हों।
जैसे — "सरस विलोचन विधुवदन लखत आली! घनस्याम।"

(च) धर्मोपमान लुप्ता — जहाँ उपमेय और वाचकपद हों किन्तु साधर्म्य और उपमान लुप्त हों।
जैसे — "नन्दन जैसा नहीं और उपवन है कोई।"

(छ) धर्मोपमेय लुप्ता — जहाँ उपमान और वाचक हों किन्तु उपमेय और साधर्म्य लुप्त हों।
जैसे — "त्यौर तिरीछे किये मुनि संगहि, हेरत संभु-सरासन मार-से।"

(ज) वाचकोपमान लुप्ता — जहाँ वाचकपद और उपमान लुप्त हों।
जैसे — "दाड़िम दसन सु सित अरुन, हैं मृग नयन विसाल।"

(झ) वाचकोपमेय लुप्ता — जहाँ वाचक और उपमेय का लोप हो।
जैसे — "इत तें उत, उत तें इतै, छिन न कहूँ ठहराति।
जक न परति चकई भई, फिरि आवति फिरि जाति॥"

(ञ) धर्मवाचकोपमान लुप्ता — जहाँ एक उपमेय को छोड़कर तीनों अंगों का लोप हो।
जैसे — "विधुवदनी मृग सावक लोचनि।"

— [illegible]
२४/०७/२१